



दैनिक भास्कर

Date: 18-11-17

रचनात्मक स्वतंत्रता पर कोर्ट का अहम संदेश

कानून में दिए गए प्रतिबंधों के अलावा अभिव्यक्ति की आज़ादी पर किसी भी रूप में रोक नहीं लगाई जानी चाहिए।

संपादकीय



पद्मावती फिल्म पर उठे राष्ट्रीय विवाद के दौरान सुप्रीम कोर्ट ने दिल्ली के मुख्यमंत्री अरविंद केजरीवाल पर बनी डाक्यूमेंटरी 'एन इनसिग्नीफिकेंट मैन' पर रोक लगाने से इनकार करते हुए लोकतंत्र के सबसे महत्वपूर्ण अधिकार पर मूल्यवान संदेश दिया है। अदालत का साफ कहना है कि कानून में दिए गए प्रतिबंधों के अलावा अभिव्यक्ति की आज़ादी पर किसी भी रूप में रोक नहीं लगाई जानी चाहिए। खुशबू रांका और विजय शुक्ला के इस वृत्तचित्र से केजरीवाल के मुंह पर स्याही पोतने वाले नचिकेता वालहेकर को इसलिए आपत्ति थी, क्योंकि वह केजरीवाल को नायक के रूप में प्रस्तुत करती है, जबकि इस बारे में मुकदमा चल रहा है। उन्हें यह भी आपत्ति थी कि इस फिल्म में केजरीवाल को

पीड़ित दिखाया गया है और बाद में अदालत में इसे सबूत के रूप में इस्तेमाल किया जा सकता है। अदालत ने भारतीय साक्ष्य अधिनियम का हवाला दिया और फिल्म में कल्पना की छूट देते हुए रचनाकार की स्वतंत्रता को कायम रखने का समर्थन किया। तीन जजों की पीठ का यह फैसला एक नज़ीर है उन लोगों के लिए जो मुकदमों का सहारा लेकर अभिव्यक्ति की आज़ादी को रोकने की कोशिश करते हैं। न्यायालय के फैसले का सम्मान होना चाहिए और समाज को इसी सोच के तहत काम भी करना चाहिए। वह सोच देश की संवैधानिक संस्थाओं के निर्णयों को सर माथे पर रखने की है लेकिन, समाज इस सोच से लगातार दूर जा रहा है। संवैधानिक विचारधारा और समाज की सोच में अंतराल बढ़ रहा है। वह अंतराल किसी क्रांतिकारी परिवर्तन और जड़ता का नहीं है बल्कि वह अंतराल कट्टरता और उदारता का है। हमारा संविधान उदारता की गुंजाइश देता है और वह तभी लागू हो सकता है जब उसके मानने वाले उदार हों। विडंबना यह है कि देश में न सिर्फ सामाजिक और धार्मिक बल्कि राजनीतिक उदारता भी दम तोड़ रही है। लोग अभिव्यक्ति की आज़ादी की व्याख्या के सिर्फ संवैधानिक संस्थाओं पर यकीन करने की बजाय राज्येतर संगठनों का सहारा भी ले रहे हैं। वे संगठन न सिर्फ रचनाकारों को धमका रहे हैं बल्कि संस्थाओं को भी परोक्ष चेतावनी दे रहे हैं। यह भारत की उस पूंजी का

दिवालिया होना है, जिसके सहारे वह तमाम सभ्यताओं को चुनौती देता रहा है। देश के नागरिकों को समझना होगा कि रचना और विचार का जवाब श्रेष्ठ विचार और रचना से दिया जाता है न कि प्रतिबंध से।



दैनिक जागरण

Date: 18-11-17

आज जायसी होते तो क्या सोचते

कृपाशंकर चौबे

संजय लीला भंसाली की बहुचर्चित फिल्म 'पद्मावती' अगले महीने रिलीज होने जा रही है, लेकिन उसे लेकर विवाद थमने का नाम नहीं ले रहा है। विवाद की वजहों में एक कहीं न कहीं धार्मिक दुराग्रह भी है जबकि जिस अमर महाकाव्य 'पद्मावत' पर यह फिल्म आधारित बताई जा रही है उसके रचयिता मलिक मुहम्मद जायसी ने आजीवन धार्मिक दुराग्रहों का प्रतिरोध किया। वह मानते थे कि सांप्रदायिक संकीर्णता मनुष्य की विकास यात्रा में दरारें पैदा करती है। इसीलिए उन्होंने मनुष्य को धार्मिक कठमुल्लेपन और कुंठाओं से मुक्ति दिलाने के लिए रचनात्मक संघर्ष किया। जायसी ने इस्लाम धर्म की वर्जनाओं का भी प्रतिरोध किया। इस्लाम में मूर्ति पूजा वर्जित है, किंतु जायसी ने उससे असहमति जताई। जायसी मुसलमान होते हुए भी हिंदू जीवन संस्कृति के प्रति आग्रहशील थे। 'पद्मावत' में शिव, पार्वती, समुद्र और हनुमान को जायसी ने जो मर्यादा दी है वह बेहद तार्किक है। इस महाकाव्य में समुद्र का जैसा वर्णन जायसी ने किया है वैसा हिंदी का कोई अन्य कवि नहीं कर पाया। हिंदू धर्म में प्रचलित प्रेम कथाओं के माध्यम से उन्हीं की बोली में जायसी ने समूचे प्राणि जगत के मंगल की कामना की और प्रेम का पंथ सुझाया। राजा रतनसेन जैसे प्रेमी और पद्मावती जैसी प्रेमिका की कल्पना जायसी ही कर सकते थे। अलाउद्दीन खिलजी दो सच्चे प्रेमियों के बीच आना चाहता था, किंतु उसकी नापाक कोशिशों की नाकामी को दिखाकर जायसी सच्चे प्रेम के महत्व को प्रतिष्ठित करते हैं।

सोलहवीं शताब्दी में जब धार्मिक असहिष्णुता ने मनुष्य की विकास यात्रा में अवरोध पैदा किया तो जायसी ने संकेत दिया था कि मनुष्य के दुःखी होने का सबसे बड़ा कारण है असहिष्णुता। असहिष्णुता के कारण मनुष्य अपनी सबसे बड़ी संपदा प्रेम को भी खो देता है। मध्यकाल में प्रेम की वह संपदा जायसी को हिंदू जीवन संस्कृति में हाथ लगी थी। आज अगर जायसी होते तो वह पद्मावती पर हो रहे विवाद से अवश्य ही दुखी हुए होते। एक तरह से उनकी ही अमरकृति पर तो विवाद हो रहा है और इस क्रम में एक-दूसरे पक्ष को समझने से इन्कार किया जा रहा है। आखिर जब फिल्म की विषय वस्तु सामने नहीं आई है और सेंसर बोर्ड ने उसे लेकर अपनी राय भी नहीं स्पष्ट की है तो फिर सड़कों पर उतरने का क्या मतलब? अगर फिल्म पद्मावती के प्रदर्शन को लेकर धमकियां दे रहे लोग यह सोच रहे हैं कि फिल्म के निर्माता-निर्देशक और कलाकारों को धमकियां देकर पद्मावती के सम्मान की रक्षा हो जाएगी तो यह सही नहीं। फिल्म पद्मावती को लेकर जारी विवाद किसी न किसी स्तर पर संकीर्णता और साथ ही असहिष्णुता को ही बयान करता है। आखिर संकीर्णता के ऐसे प्रदर्शन के बाद यह उम्मीद कैसे की जा सकती है कि आज कोई जायसी किसी हिंदू चरित्र का बखान करने का साहस जुटाएगा। पद्मावती को लेकर जैसा विवाद खड़ा हो गया है वह कला-संस्कृति के प्रचार-प्रसार में

बाधक सिद्ध हो सकता है। ध्यान रहे कि हिंदू जीवन संस्कृति के प्रति जायसी की तरह रसखान भी इसके प्रति आकृष्ट हुए थे।

रसखान का चित्त श्रीमद्भागवत और श्रीकृष्ण में इतना रम गया था कि उनका दर्शन करने वह वृंदावन चले गए थे। मंदिर के पुजारी ने मुसलमान होने के कारण उन्हें मंदिर में प्रवेश करने की इजाजत नहीं दी तो वह मंदिर के कोने में बैठ गए और प्रण किया कि जब तक बांके बिहारी को नहीं देखेंगे, अन्न-जल ग्रहण नहीं करेंगे। सपने में पुजारी को मूर्ति की तरफ से संकेत मिला कि वह उनका भक्त है, उसे दर्शन करने दो तो पुजारी दौड़ा रसखान के पास गया और दर्शन कराया। उसके बाद रसखान गोकुल जाकर वल्लभ संप्रदाय में गोस्वामी विठ्ठलदास के शिष्य बन गए और कृष्ण के प्रेम में ऐसे डूबे कि जाति, धर्म से ऊपर उठ गए। उन्होंने कृष्ण और राधा के मधुर रूपों के वर्णन में तत्कालीन सामाजिक परिस्थितियों का खयाल रखा तो गंगा माहात्म्य का वर्णन इस तरह किया कि उससे अच्छा वर्णन शायद ही अन्य कोई कर सके। सोलहवीं-सत्रहवीं शताब्दी में धार्मिक सहिष्णुता का जो दृष्टांत रसखान पेश करते हैं उसी कालखंड में वही काम अब्दुरहीम खानखाना भी करते हैं। रहीम भी हिंदू देवताओं के प्रति सम्मान प्रकट करते हैं: भजि मन राम सियापति रघुकुल इस। दीनबंधु दुखटारन, कौसलधीस।। इसी तरह रहीम शिव, कृष्ण, हनुमान और सूर्य की वंदना कर उनके प्रति भी सम्मान प्रकट करते हैं। जायसी, रसखान और रहीम ने सहिष्णुता और उदारता की वह मिसाल पेश की जिसकी कामना अमीर खुसरो ने की थी। अमीर खुसरो ने तेरहवीं-चौदहवीं सदी में उस सेतु का निर्माण किया था जो हिंदू-मुसलमान को जोड़ने वाला था। अबुल हसन यमीनुद्दीन अमीर खुसरो ने दो जातियों को मिलाने के लिए देसी-विदेशी भाषा में निकटता लाने के मकसद से शब्दकोशों का निर्माण किया। अमीर खुसरो कदाचित पहले मुस्लिम कवि थे जिन्होंने हिंदी शब्दों का बहुतायत इस्तेमाल किया और हिंदी, हिंदवी एवं फारसी में एक साथ लिखा। सबसे पहले अमीर खुसरो ने ही अपनी भाषा के लिए हिंदवी का उल्लेख किया था। इस तरह हम देख सकते हैं कि उर्दू-हिंदी की साझी परंपरा सैकड़ों साल पुरानी है।

भक्तिकाल में अवधी के अनेक मुस्लिम कवियों ने हिंदू राजाओं के प्रेमाख्यान लिखे। इतिहास स्वीकृत तथ्य है कि अवध के नवाबों ने हिंदुओं के त्योहारों को संरक्षण दिया। उर्दू के कई मुस्लिम शायरों ने होली और बसंत पर शायरी की। लखनऊ के हिंदू शायरों की मर्सियानिगारी पूरी दुनिया में मशहूर है। उर्दू की दास्तानगोई कला को भी हिंदू कलाकार ही आज आगे बढ़ा रहे हैं। कहने का आशय यह है कि 'पद्मावती' पर विवाद जातीय-मजहबी गुमान को प्रकट करता है, जबकि जायसी और उन्हीं श्रेणी के अन्य कवि इससे कोसों दूर थे।

राष्ट्रीय
सहारा

Date: 17-11-17

बनेगी विकासमाला

जयंतिलाल भंडारी



देश और दुनिया के अर्थ विशेषज्ञों का मानना है कि “भारतमाला परियोजना” भारतीय अर्थव्यवस्था की नई जीवन रेखा बनने जा रही है। हाल ही में केंद्र सरकार ने देश के राष्ट्रीय राजमार्ग (नेशनल हाईवे) के विकास से संबंधित महत्वाकांक्षी “भारतमाला प्रोजेक्ट” के तहत 83 हजार किलोमीटर की राजमार्ग परियोजनाओं के निर्माण को मंजूरी दी है। इन राजमार्गों का निर्माण वर्ष 2022 तक पूरा होगा और इन पर 6.92 लाख करोड़ रुपये का व्यय निर्धारित है। “भारतमाला परियोजना” के लिए 70 फीसद हिस्सा केंद्र सरकार खर्च करेगी और 30 फीसद हिस्सा निजी भागीदारी से आएगा। “भारतमाला परियोजना” से बड़े पैमाने

पर रोजगार के नये अवसर निर्मित होंगे। अनुमान है कि इस योजना से अगले पांच वर्षों में लोगों को 14.2 करोड़ कार्यदिवस का रोजगार मिल सकेगा। गौरतलब है कि “भारतमाला परियोजना” देश में “स्वर्णिम चतुर्भुज योजना” के बाद देश की दूसरी सबसे बड़ी राजमार्ग विकास परियोजना है। देश के जिन राज्यों की सीमाएं इस परियोजना की परिधि में आएंगी, उनमें गुजरात, राजस्थान, पंजाब, जम्मू कश्मीर, हिमाचल प्रदेश, उत्तराखंड, उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश, महाराष्ट्र, छत्तीसगढ़, झारखंड, बिहार, सिक्किम, असम, अरुणाचल, मणिपुर और मिजोरम में भारत-म्यांमार सीमा शामिल है। “भारतमाला परियोजना” के तहत कुल 44 आर्थिक गलियारों की पहचान की गई है। 26,200 किलोमीटर लंबे आर्थिक गलियारों को चिह्नित किया गया है। इसमें से 9000 किलोमीटर आर्थिक गलियारे का विकास पहले चरण में होगा। गलियारे के तहत बेंगलुरु-मंगलुरु, मुंबई-कोचीन-कन्याकुमारी, हैदराबाद-पणजी, संबलपुर-रांची के मार्ग शामिल हैं। निश्चित रूप से अच्छी सड़कें किसी भी राष्ट्र की जीवनरेखा मानी जाती हैं। जहां आर्थिक विकास के लिए यह महत्वपूर्ण है, वहीं सामाजिक विकास का भी यह अहम हिस्सा है। देश में यात्रियों की कुल संख्या में से 80 प्रतिशत से ज्यादा सड़क परिवहन से यात्रा करते हैं। देश के विकास के लिए उचित सड़क नेटवर्क की आवश्यकता को बहुत पहले ही समझ लिया गया था। 1943 में बनाई गई नागपुर योजना के नाम से विख्यात, पहली सड़क विकास योजना में पहली बार देश में सड़कों की जरूरत को दीर्घकालिक आधार पर देखा गया और पहली बार ही सड़क पणाली को कार्यात्मक अनुक्रम में वर्गीकृत किया गया, जिनमें राष्ट्रीय राजमार्ग (एनएच), राज्य राजमार्ग (एसएच), प्रमुख जिला सड़कें (एमडीआर) अन्य जिला सड़कें (अडीआर) और ग्राम सड़कें (वीआर) शामिल थीं।

राष्ट्रीय राजमार्गों के विकास की जिम्मेदारी केंद्र सरकार की होती है। यद्यपि देश में लगभग 46.90 लाख किलोमीटर लंबाई की सड़कों का विशाल नेटवर्क है। लेकिन राष्ट्रीय राजमार्गों की कुल लंबाई 82,803 किलोमीटर ही है, जो सड़कों के कुल नेटवर्क के दो प्रतिशत से कम है। राष्ट्रीय राजमार्गों के विकास के लिए देश में “राष्ट्रीय राजमार्ग विकास कार्यक्रम” की 1998 में शुरुआत की गई थी। इसके तहत “स्वर्णिम चतुर्भुज परियोजना” के नेटवर्क से चेन्नई, कोलकाता, दिल्ली और मुंबई को जोड़ा गया है। यह भारत में सबसे बड़ी राजमार्ग परियोजना है और दुनिया में पांचवां क्रम रखती है। हालांकि इसे पूरा होने में काफी वक्त लग गया। ऐसे में यह शुभ संकेत है कि केंद्र सरकार ने “भारतमाला योजना” को “स्वर्णिम चतुर्भुज परियोजना” में हुए विलंब के परिदृश्य से बचाते हुए समय पर पूरा करने का लक्ष्य सुनिश्चित किया

है। सरकार को उम्मीद है कि इस परियोजना पर निजी क्षेत्र की ओर से जबरदस्त समर्थन मिलेगा। इस परियोजना के तहत सभी परियोजनाओं की तकनीकी, वित्तीय, आर्थिक मंजूरी एनएचएआई और सड़क परिवहन एवं राजमार्ग मंत्रालय के तहत आने वाली परियोजना मंजूरी और तकनीकी जांच की अधिकार प्राप्त समिति करेगी। परियोजनाओं की जांच के लिए दिशा-निर्देश पहले ही तैयार कर लिये गए हैं। निसंदेह “भारतमाला परियोजना” से मौजूदा राजमार्ग बुनियादी ढांचे के अंतर को पाटने में मदद मिलेगी, जिससे यात्रियों व माल की आवाजाही सुगम हो जाएगी। “भारतमाला परियोजना” से आर्थिक गलियारों में यातायात तेज होगा। इससे ग्रामीण इलाकों में भी सड़कों के विकास को गति मिलेगी। राजमार्गों के तेजी से विकास से निजी क्षेत्र के लिए अवसर बढ़ेंगे। इस योजना को लागू किए जाने से भारत में विनिर्माण क्षेत्र में बहुप्रतीक्षित लागत प्रतिस्पर्धात्मकता आएगी क्योंकि इससे लॉजिस्टिक लागत में उल्लेखनीय कमी आएगी। इसके साथ ही प्रमुख शहरों के बीच तय किए जाने वाले समय में भी काफी कमी आएगी।

इस परियोजना से छोटे शहरों में औद्योगिक विकास को प्रोत्साहन मिलेगा और रोजगार के अवसरों में वृद्धि होगी। ग्रामीण इलाकों से उपज की बेहतर परिवहन व्यवस्था के कारण किसानों के लिए आर्थिक सम्पन्नता और रोजगार के अवसर बढ़ेंगे। चूंकि भारत दुनिया में फल व सब्जी का दूसरा सबसे बड़ा देश है, लेकिन अच्छी सड़कों व भंडारण की कमी के कारण करीब 35 फीसद फल व सब्जी खराब हो जाती है। ऐसे में भारतमाला परियोजना से फल व सब्जी उत्पादों का अच्छा इस्तेमाल होगा और देश में खाद्य प्रसंस्करण उद्योग को भी प्रोत्साहन मिलेगा। इस परियोजना से पिछड़े और आदिवासी इलाकों में आर्थिक गतिविधियां तेज होगी। इस परियोजना से सीमा वाले इलाकों, तटीय इलाकों और पड़ोसी देशों के लिए कारोबारी मागरे संबंधी लाभ भी बढ़ जाएंगे। हम आशा करें कि केंद्र सरकार शुरुआत से ही भारतमाला परियोजना के क्रियान्वयन के हर कदम पर उपयुक्त निगरानी रखेगी। साथ ही इस परियोजना के लिए समय प्रबंधन और लागत प्रबंधन के सिद्धांतों का पालन किया जाएगा। यह भी उपयुक्त होगा कि सरकार द्वारा भारतमाला परियोजना के तहत समय से पहले ठेके पूरा करने वाले ठेकेदारों को कुल परियोजना लागत का 10 फीसद तक बोनस दिया जाना सुनिश्चित किए जाने से सड़क निर्माण को रफ्तार मिलेगी। ऐसा किए जाने पर निश्चित रूप से भारतमाला परियोजना देश के ढांचागत विकास में मील का पत्थर साबित होगी। साथ ही यह परियोजना देश की विकास रेखा सिद्ध होगी और इससे अर्थव्यवस्था तेजी से गतिशील होगी।

Date: 17-11-17

दिखानी होगी संजीदगी

सुरेश भाई

समय था, जब लोग हिमालय का भ्रमण पैदल ही करते थे। उस समय की बारिश से पहाड़ों में नये-नये जलस्रोत फूटते थे। नदियां भी उफान पर रहती थी। इसके बावजूद तीर्थस्थलों का दर्शन करने वाले लोग भी वापस आपने घरों तक सुरक्षित पहुंच जाते थे। पहाड़ के रास्तों में छोटी-छोटी चट्टियां, चाय पकौड़ी और भोजन के लिए बने छप्पर और महात्माओं की कुटिया में रहकर आनंद के साथ लोग रात गुजराते थे। आज ये पैदल रास्ते इतने चौड़े हो गए कि आधुनिक प्रकार की बसें व कारे चलने लगी है। इन सुविधाओं की प्राप्ति के लिए पहाड़ों की भौगोलिक संरचना, सवेदनशीलता का बिल्कुल भी

खयाल नहीं रखा गया है। पर्यटन और पैसों के लालच में अंधाधुंध निर्माण हुआ और नदियों को कई स्थानों पर बांधा गया है। इस प्रक्रिया में मिट्टी और जंगल का इतना क्षरण हुआ कि पहाड़ नासूर बनकर जख्मी हो गए हैं। इसका परिणाम है कि एक ही स्थान पर कई बार भूस्खलन हो रहा है। प्रकृति जब तक इन घावों को भरने के लिए नई हरियाली उगाती है, तब तक अगले साल बनने वाली और चौड़ी सड़क अथवा नदी परियोजना उसे भी रौंद डालती हैं। यदि ऐसा नहीं हुआ तो जंगल की आग में हरियाली राख बन जाती है। पर्यटक एवं तीर्थ यात्रियों की सुख-सुविधाओं के लिए सड़कों के किनारे बने होटलों और ढाबों के आसपास दूरस्थ गांव के लोग रोजगार के लिए जमा होने लगे हैं। इसके कारण तेजी से नदियों और भूस्खलन से प्रभावित पहाड़ों के नजदीक घर बनाए जा रहे हैं। जहां कोई पूछने वाला नहीं कि घर बनाते समय जल सरक्षण व जल निकासी, शौचालय का गड्ढा धरती की सीमित आकृति के आनुसार किस तरह बनाई जा सकती है।

लगातार भूस्खलन और निर्माण कायरे का मलवा गाद के रूप में नदियों के अलावा बस्तियों, खेतों में बहकर आ रहा है। इसके चलते खेती-बाड़ी की जमीन के साथ गांव भी दब रहे हैं। इस बेहिसाब बारिश को धरती ने भी संभालने से मना कर दिया है। इसके कारण हिमालय में हजारों गांव पर भूस्खलन का खतरा मंडरा रहा है। अकेले उत्तराखंड में इस तरह की स्थिति के बीच लगभग 1000 गांवों का अस्तित्व संकट में है। लेकिन राज्य सरकार ने इसमें से 395 गांव को ही विस्थापित करने की सोची है। आलम ये है कि राज्य के पास अभी तक न तो कोई पुर्नवास नीति है, और भूमि व बजट की इतनी अधिक कमी है कि केवल बागेश्वर जिले के दो गांव का ही विस्थापन मंजूर कर पाई है। वैसे प्रभावित क्षेत्र के विस्थापन के लिए भूमि पहली आवश्यकता है। पहाड़ी राज्यों में अधिकांश भूमि का मालिक वन विभाग है। विडम्बना है कि बांधों, बैराजों, पूंजीपतियों को भूमि उपलब्ध कराने में जितनी देर लगती है, उससे 100 गुना अधिक समय प्रभावितों को भूमि देने की प्रक्रिया में व्यतीत हो जाता है। जियोलाॉजिकल सर्वे आफ इंडिया ने भूस्खलन के लिए अति संवेदनशील गांवों की आबादी को अन्यत्र ले जाने और इनमें नई आबादी न बसाने का सुझाव सरकार को दिया है। इसी तरह वाडिया भूगर्भविज्ञान संस्थान ने भी आपदा संवेदनशील गांव में तेज बारिश से बढ़ रही नमी के कारण बादल फटने की संभावनाओं पर केंद्र को अवगत कराया है। इसके बावजूद नेपाल-भारत के बीच पंचेश्वर, जमरानी जैसे विशालकाय बांधों की डीपीआर तैयार हो रही है। इससे पूर्व निर्मित टिहरी बांध के प्रभावित क्षेत्र पर नजर डालेंगे तो सन 2003 तक टिहरी बांध के डूब क्षेत्र से लगभग डेढ़ लाख से अधिक लोगों को अपना घर बार छोड़ना पड़ा था। उसके बाद भी बांध में पानी भरने के कारण यहां शेष बचे 100 से अधिक गांव पर भूस्खलन का खतरा मंडरा रहा है, जिससे बचने के लिए प्रतिवर्ष औसत 5 नये गांवों का विस्थापन अदालतों के आदेश पर किया जाता है।

विकास का यही चेहरा अब भारत-नेपाल के बीच महाकाली घाटी में दोहराया जा रहा है। इन जलविद्युत टरबाइनों के पीछे जमी रेत बरसात के समय छोड़ी जाती है, जो मैदानी उपजाऊ भूभाग को रेतीला बना रही है। हिमालय में भूकंप का खतरा बना हुआ है, दूसरी ओर निर्माण कायरे में बड़ी मशीनों व डाइनामाइट के प्रयोग से पहाड़ हिल गए हैं। इससे बचने के लिए हरित निर्माण तकनीक का उपयोग नहीं होता है। पेरिस जलवायु सम्मेलन की पहल को कामयाब करना है तो भारत को अपने हिमालय के प्रति अपनी जिम्मेदारी का निर्वहन करना पड़ेगा। 8 सितम्बर 2017 को हिमालय नीति के लिए भारत के सांसदों के नाम खुला पत्र भी जारी किया गया है। लेकिन यह तभी संभव है जब केंद्र सरकार हिमालय की आवाज को सुने और एक हिमालय नीति का निर्माण करे।

फिल्म पर विवाद

फिल्मों या रचनात्मकता पर विवाद नई बात नहीं, लेकिन उनके सामने आने से पहले ही इतने बड़े बवंडर का यह शायद पहला मामला हो। रिलीज की तारीख जैसे-जैसे करीब आ रही है, संजय लीला भंसाली की फिल्म पद्मावती का विरोध बढ़ता जा रहा है। यह सब तब है, जब सर्वोच्च न्यायालय पहले ही यह कहते हुए फिल्म पर प्रतिबंध लगाने की याचिका खारिज कर चुका है कि किसी फिल्म के बारे में फैसला लेना सेंसर बोर्ड का काम है और किसी भी फिल्म को प्रमाणपत्र देने से पहले वह हर पहलू पर गौर करता है। चिंता की बात यह है कि यह पूरा विवाद फिल्म देखे बिना, यानी अटकलों पर आधारित है। हालांकि फिल्म निर्माता तमाम अटकलों को खारिज करते रहे हैं। राजस्थान से शुरू हुआ यह हंगामा अब कई राज्यों में पहुंच चुका है। निर्माता के सिर से लेकर अभिनेत्री की नाक काटने तक की धमकियां दी जा रही हैं। एक ऐसे विषय पर खून से खत लिखकर विरोध जताने की बात कही जा रही है, जिसे लेकर न इतिहास स्पष्ट है, न वर्तमान।

रानी पद्मावती पर यह कोई पहली फिल्म हो, ऐसा भी नहीं है। सत्तर के दशक में तमिल में भी एक फिल्म बनी थी चित्तौड़ की रानी पद्मिनी। इसमें शिवाजी गणेशन और एमएन नांबियार जैसे अभिनेताओं और वैजयंती माला का यादगार नृत्य था। इसके बाद हिंदी में भी रानी पद्मिनी नाम से फिल्म बनी, जिसमें अनीता गुहा पद्मिनी और सज्जन अलाउद्दीन खिलजी बने थे। जयराज ने महारावल रतन सिंह की भूमिका निभाई थी। मोहम्मद रफी और आशा भोंसले के गानों के लिए वह फिल्म आज भी याद की जाती है। इसके अलावा भी कई भाषाओं में इस पृष्ठभूमि पर फिल्में बनीं। धारावाहिक बना, तब कोई विवाद नहीं हुआ। कुछ दिनों पूर्व तक सेंसर बोर्ड के अध्यक्ष रहे पहलाज निहलानी ने भी ऐसे ही तर्कों के साथ मौजूदा विरोध को गलत करार दिया है। जाहिर है, बॉलीवुड फिल्म के साथ खड़ा दिखाई दे रहा है। लेकिन इस फिल्म के समर्थन-विरोध में अब शुद्ध राजनीति घुस आई है। राज ठाकरे की महाराष्ट्र नवनिर्माण सेना यानी मनसे ने इस विवाद को सत्तारूढ़ दल के खिलाफ एक हथियार के रूप में लिया है और महाराष्ट्र के सिनेमाघरों को फिल्म दिखाने पर अपनी ओर से सुरक्षा देने की घोषणा कर दी है। लेकिन इस पूरे विवाद में गैर-भाजपा दलों ने जैसा मौन धरा है, वह भी गौरतलब है। जाहिर है, इसके कई अर्थ लगाए जा रहे हैं, और होंगे भी।

इस विवाद ने इतिहास की संवेदनशीलता और ऐसे मुद्दों पर फिल्म बनाने या लेखन पर भी बहस छेड़ दी है। फिल्म एक रचनात्मक माध्यम है और कल्पना उसका अभिन्न हिस्सा। इसे पूर्णता में देखने की जरूरत है। यह तभी होगा, जब हम रचना के मुकम्मल रूप में सामने आने तक इंतजार करें। पर ताजा प्रकरण में यह इंतजार नहीं दिखाई दिया है। जिस तरह नाम और चरित्र को लेकर विवाद छिड़ा है, उसमें एक खतरा यह भी दिखाई देता है कि ऐसे में तो ऐतिहासिक फिल्में ही नहीं बन सकेंगी। यानी कल हम अपने उत्सवों के नाम पर होली या गुलाल जैसी फिल्में भी नहीं बना पाएंगे। प्रश्न है कि यह सब हुआ, तो कैसी रचनात्मकता देंगे और कैसा समाज बनाएंगे हम? इस विरोध में बढ़ती हिंसात्मक वृत्ति भी हमें सतर्क कर रही है। जो समाज सलमान रुश्दी के सैटेनिक वर्सेज पर खमैनी के फतवे का खुलकर विरोध करता है, वह समाज एक फिल्म को लेकर मरने-मारने की बात कैसे कर सकता है? फिलहाल विवाद इतना बढ़ चुका है कि सरकार की निरपेक्ष भूमिका की दरकार है। एक ऐसा हस्तक्षेप, जो सारी भावनाओं का ख्याल रख सके। सरकारें अपने

समाजों को खुश रखने के लिए हैं, लेकिन यह भी सच है कि कोई भी समाज बिना रचनात्मक शक्ति के आगे नहीं बढ़ सकता।



Date: 17-11-17

Stories of a Rajput queen

Harbans Mukhia

The Mewar royal descendant Vishwajeet Singh's recent differentiation, in a newspaper article, between history and fiction with regard to the film Padmavati, came as a refreshing surprise. I recount here the historical facts and the popular versions of the story. Sultan Alauddin Khalji had earned a reputation among contemporary and modern historians for several achievements: Successfully thwarting Mongol invasions of India, conquest of large territories, strictly enforcing low prices of commodities in the markets for the common people's daily purchases, declared defiance of the Shariat in matters of governance etc, but not for lustful pursuit of women. So how does he get tied up with Padmavati?

Khalji defeated the Rana of Chittor in 1303 and died in 1316. No one by the name of Padmini or Padmavati existed then — or at any time — in flesh and blood resembling the story. She was born in 1540, 224 years after Khalji's death, in the pages of a book of poetry by Malik Muhammad Jayasi, resident of Jayas in Awadh, a very long way from Chittor. Jayasi was a Sufi poet and followed the poetic format where God is the beloved and man is the lover who overcomes hurdles to unite with the beloved. Khalji embodied the many hurdles. There are just two historical facts relevant to the story: Khalji's attack on Chittor and Rana Ratan Singh's defeat. But then, besides recorded and verifiable historical facts, there is another set of facts too, culturally constructed and embodied in popular memory, told, retold and retold yet again. Untrained to distinguish historical facts from cultural memory, these acquire the status of history for common people. Jawaharlal Nehru was particularly sensitive to this blurring in people's minds. As memory does not follow the norm of verifiability, it is subject to quick metamorphoses.

The Padmavati story, like many others, has undergone several mutations. Ramya Sreenivasan has traced the wide circulation and mutation of the story from North India and Rajasthan to Bengal from the 16th to the 20th century in her magnificent book, *The Many Lives of a Rajput Queen*. To begin with, in Jayasi's version and its several Urdu and Persian translations between the 16th and 20th centuries, Khalji was courting Padmini with a view to marrying her. In Rajasthan, during the same period, the emphasis changed to the defence of Rajput honour which had come to be invested in Padmini's body. It was in Bengal in the 19th century that Padmini acquired the persona of a heroic queen committing jauhar in order to save her honour against a lusty Muslim invader. Concealed in it was a vicarious patriotic resistance to colonial dominance which also characterised other literary productions in the region such as Bankim Chandra's celebrated *Anand Math*. It is this memory in Rajasthan that has been turned into a hard, unambiguous historical fact which brooks no disputation. The inversion of a character imagined by a Muslim poet into the defender of Hindu honour can pass quietly unnoticed.

This brings us to the present-day political context. While communal conflict is not a late entry into the Indian social and political scenario, for it has often been used as a form of electoral mobilisation, what is new is its propagation with the use of state power almost as an inalienable attribute. If the Congress tactically flirted with the communal card at times to corner the minority vote and at others to win the majority support, as Indira Gandhi did in Kashmir in 1983, for the Sangh Parivar this lies at the very heart of its ideology and is now flaunted openly as Hindutva. The Parivar has long envisioned a consolidated Hindu vote bank. M S Golwalkar had sought to accomplish this by restricting the franchise to the Hindus alone. That is also the target of the present regime, by implicitly disenfranchising the largest minority, the Muslims — to begin with, by making its vote irrelevant to their electoral strategy. Social acceptance of this irrelevance is promoted by a demonisation of Muslims, past and present, in which each individual, and by extension, the community, is projected as cruel, lusty, and above all, an enemy of the Hindus.

It is strategic for it to create the image of the 80 plus per cent Hindu community under siege by the Muslims and to create a long “history” to back it up. If historical facts point to a more mixed picture of interaction, one where Hindus and Muslims do not stand in exclusive, opposing camps, manufacture a dispute, change the text books and let MLAs and ministers have the final word on what constitutes true history. There is the popular memory to be mobilised as its authentic version. It is notable that no professional historian of the Parivar, if there is one, has come forward to engage in a discussion of what the Parivar claims is the wrong, left-liberal history, whatever it means. No serious book, or even an article, has been written on this theme so far. All we have are loud screams on TV channels and periodic declarations by non-historians that all history has so far been a single distorted version; no one has taken note of the fact that there is not one but innumerable “left-liberal” and other versions of history and that often “left-liberals” have been sharply critical of one another; nor has anyone unearthed any new facts hitherto ignored or proposed a clear new nationalist version of how history should be written. There is much to be gained by the Sangh Parivar from this strategy. Whether the BJP wins or loses the next election, the social discourse will remain fixated on the Hindu-Muslim question, from Akbar and Aurangzeb to Taj Mahal and Padmavati, and the questions of economy, development, equality, Dalits, caste oppression, cleavages within communities etc will remain on the sidelines — the very colonial strategy of divide and rule.
